Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 13 ~ Issue 8 (August 2025) pp: 66-74
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में जैन धर्म का योगदान : धर्म के समाजशास्त्र अंतर्गत एक अंतर्दृष्टि

डॉ. विमल कुमार लहरी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में यह दृष्टिगत करने का प्रयास किया गया है कि हमारे महान भारत एवं इसकी पावन भूमि पर समय-काल के सापेक्ष अनेक धर्म एवं संप्रदायों की उत्पत्ति, विकास तथा पतन हुआ। कई धर्म एवं उससे जुड़ी वैचारिकी भारत के बाहर से भी यहाँ आयी और प्रचारित-प्रसारित हुई। भारत की सहिष्णु संस्कृति ने सबको पुष्पित एवं पल्लवित होने का पर्याप्त अवसर दिया। इसी कड़ी में हम जैन धर्म को भी देखते हैं जिसका अस्तित्व भारत के साथ-साथ पूरी दुनिया में ढाई हजार वर्षों से बना हुआ है। भारतीय धर्मग्रंथों में जैन धर्म की स्थिति का यदि हम मूल्यांकन करें तो इस धरा पर जैन धर्म ने सबसे आगे बढ़कर मानव मात्र के कल्याण एवं अस्तित्व हेतु न केवल पवित्रता, सहिष्णुता, आध्यात्मिक संतुष्टि एवं पारिस्थितिकी संरक्षण जैसे मानवोचित् विषयों पर ध्यान दिया, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा,दर्शन,गणित शास्त्र,वास्तुकला,खगोल विज्ञान के साथ-साथ साहित्य आदि क्षेत्रों में भी अद्वितीय योगदान दिया। जैन धर्म की मूलभूत मान्यताओं एवं महान तीर्थंकरों के वचनों के साथ-साथ उनके अनुयायियों एवं अन्य धर्मावलम्बियों के सकारात्मक पहल से जो समाज बना उसे कभी रामराज्य तो कहीं यूटोपिया तो कहीं पर बेगमपुरा का नाम दिया गया। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के अंतर्गत जैन धर्म के मूल्यों का प्रचार-प्रसार एवं उनका धर्म से इतर सभी मानव के द्वारा अनुकरण आवश्यक प्रतीत होता है। पहचान का संकट, विश्वास का संकट एवं आपसी भाईचारे की कमी के इस दौर में भी मानवता को गरिमा प्रदान की जा सके एवं लोकजन का जीवन आज भी गौरवपूर्ण हो सके,जैसी वैचारिकी के जैन धर्म का यात्रा जारी है। आज भी इन सभी पक्षों पर जैन धर्म की वैचारिकी की एवं उसका दर्शन सकारात्मक प्रभाव रखने में सक्षम दृष्टिगोचर होता है।

बीज शब्द: *संप्रदाय, बेगमपुरा, अनंत, शाश्वत,अनंत, असीम, प्राग्वैदिक, पुद्गल, अपरिग्रह, अभिकरण, त्रिरत्न।*

Received 01 Aug., 2025; Revised 09 Aug., 2025; Accepted 11 Aug., 2025 © The author(s) 2025.
*Published with open access at **www.questjournas.org***

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

मानव सभ्यता की यात्रा में धर्मगत वैचारिकी का पुरातन इतिहास रहा है।इस वैचारिकी में कुछ ने जोड़ने का काम किया, संयोजन का काम किया, लोकजन को एक साथ लेकर चलने का काम कियाएवं मानवता को सर्वोपरि माना तो वहीं कुछ ने इससे इतर तोड़ने का काम किया। लोकजन को विभिन्न खेमे में बांटने का काम किया एवं सिर्फ व्यक्ति विशेष के साथ आगे बढ़ते हुई मानव और मानव के बीच विविध स्तरों पर भेद की वैचारिकी को आरोपित कर इस धारा की अधिकांश जनसंख्या को हाशिये पर ढकेल दिया,ऐसी स्थिति में जैन धर्म का आगमन हाशिये के लोकजन के लिए अमृत समान था। वास्तव में "जैनधर्म विशुद्ध मानवतावाद पर टिका भारतीय संस्कृति का कदाचित् प्राचीनतम धर्म है जिसने अहिंसा और अपरिग्रह का अनुपम सन्देश देकर समस्त मानव को राहत की सांस दी है। समता, आत्मपुरुषार्थ, सर्वोदय, कर्मवाद, आत्म-स्वातन्त्र्य आदि जैसे मानवीय सिद्धान्तों की प्रस्थापना कर जैनधर्म ने जातिवाद और वर्गभेद की अभेद्य दीवारों को नेस्तनाबूत कर समाज में एक नयी चेतना दी है। इतना ही नहीं, उसने मानवतावादी विचारधारा को साहित्य, कला और स्थापत्य में भी अंकित किया है।"[1]जिसमें पहली बार राजा ऋषभदेव ने भेद रहित कर्म की वैचारिकी को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया और अपनी जनता को **'कृषि करो और ऋषि बनो'** का मार्ग सुझाया। राजा ऋषभदेव ने पहली बार मानव को इस बात से अवगत कराया कि मनुष्य का सुखी एवं श्रेष्ठ जीवन के साथ उचित रीति से जीवन को गतिमान करने हेतु असि,मसी,विद्या, शिल्प तथा वाणिज्य साहित छः कर्मों का ज्ञान होना आवश्यक है। कालान्तर में राजा ऋषभदेव ने सांसारिक उत्तरदायित्व को त्याग कर संन्यास मार्ग को अपनाया एवं मुनि दीक्षा

लेकर कैलाश पर्वत की ओर गमन किए। कैलाश पर्वत पर कठोर तपस्या के बाद कैवल्य ज्ञान प्राप्ति हुई। तदोपरांत उन्होंने सर्वजन के कल्याण हेतु अपने ज्ञान को लोकजन को उपलब्ध कराकर उन्हें मोक्ष मार्ग की तरफ आगे बढ़ाया तथा अपने आठ कर्मों का नाश कर निराकार सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए।राजा ऋषभदेव को **'आदिनाथ'** के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह राजा ऋषभदेव ने जिस धर्म को इस धरा पर पुष्पित पल्वित किया उसे कालांतर में जैन धर्म के नाम से प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

इस तरह "हिन्दू धर्म के प्रतिरोधी धर्म के रूप में सर्वप्रथम भारतीय धरा पर जिस धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, उस धर्म को जैन धर्म के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यह धर्म क्रांतिदर्शी सुधारवादी धर्म के रूप में छठी शताब्दी ईशा पूर्व में विकसित हुआ।"[2]"जैन धर्म में ईश्वर का कोई अस्तित्त्व नहीं है। वह ईश्वरविषयक युक्तियों का तक खण्डन करता है तथा वह ईश्वर का निषेध करने में विशेष जागरूक बना हुआ है। जैनाचार्यों का विश्वास है कि सृष्टि की रचना किसी ईश्वर ने नहीं की है, वह स्वयं प्रकृति के नियमों से संचालित होकर चल रही है। जैनाचार्यों का यह तर्क है कि जड़ और चेतन दोनों अनादि और स्वयंसिद्ध हैं। अतएव, सृष्टिकर्ता के रूप में किसी परम शक्ति की परिकल्पना करने की उन्हें आवश्यकता ही नहीं होती। उनका कहना है कि सृष्टि का निर्माण और संचालन करने के लिए ईश्वर जैसी किसी महान शक्ति की अनिवार्यता नहीं है। ऐसी कोई शक्ति नहीं, जिसे कर्त्ता, धर्त्ता और हर्ता माना जा सके। सृष्टि किसी की कृति नहीं, वह तो अनन्त, असीम और अनादि है। इसीलिए जैन-धर्म को निरीश्वरवादी कहा जाता है।"[3]

इस तरह से देखा जाए तो राजा ऋषभदेव ने जैन धर्म के माध्यम से हाशिये के लोकजन को जीवन के वास्तविक फलसफा का मूल मंत्र दिया। इस तरह जैन धर्म की परंपरा राजा ऋषभदेव से प्रारंभ होकर 24 वें जैन तीर्थंकर महावीर तक पहुंच चुकी है। तीर्थंकर परंपरा की यात्रा में सभी तीर्थंकरों ने समय, काल एवं परिस्थिति के अनुरूप दुनिया में शांति एवं सहजीवन को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। मानव और मानव के बीच किसी भी स्तर पर होने वाले भेद को पूरी तरह नकारा। जैन धर्म की प्राचीनता के संदर्भ में कहा जाता है- "जैन धर्म उतना ही पुराना है जितना प्रागैतिहासिक काल में ऋग्वेद"[4]"जैन धर्म की दो बड़ी विशेषताएँ अहिंसा एवं तप है। इसलिए ये अनुमान तर्क-सम्मत लगता है कि अहिंसा और तप की परंपरा प्राग्वैदिक थी और उसी का विकास जैन धर्म में हुआ। यह बात जैन धर्म के इतिहास से भी प्रामाणित होती है।"[5]

जैन धर्म की परंपरा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी वैश्विक पटल पर अपनी परंपरागत वैचारिकी के साथ गतिमान है एवं भारतीय संस्कृति एवं उसकी ज्ञान परंपरा को वैश्विक स्तर पर पुष्पित-पल्लवित कर रही है भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में जैन धर्म के योगदान को कुछ पन्नों में समाहित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध आलेख की शब्द सीमा को देखते हुए भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में जैन धर्म के अवदान को अधोलिखित बिंदुओं पर संपादित करने का सार्थक प्रयास किया गया है:

जैन धर्म की तीर्थंकर परंपरा

जैन धर्मावलंबियों की मान्यता है कि यह धर्म अनंत, शाश्वत एवं सनातन है। काल एवं परिस्थितियों के सापेक्ष जैन धर्म पर असत्य के बादल घेरे रहे हैं। असत्य के बादलों को सत्य की बुनियाद से हटाने का काम भारत की महान तीर्थंकर परंपरा ने किया। जैन परंपरा के अंतर्गत माना जाता है कि जैन तीर्थंकर विविध कालखंड एवं परिस्थितियों से अवतरित होकर सत्य के सौंदर्य को स्थापित करते रहे हैं।आज भी इस परंपरा के लोग जैन धर्म की वैचारिकी को पुष्पित-पल्लवित कर रहे हैं।

जैन तीर्थंकर के शाब्दिक अर्थ को हम देखें तो इसका आशय जोड़ने वाला अथवा पुल बनाने वाला व्यक्ति,जन्म,जरा, मृत्यु के भवजाल से बाहर निकालने वाला सेतु से है। इस सेतु परंपरा अंतर्गत जैन धर्म में विविध कालखंडों में लोकजन को सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर ले जाने वाले 24 तीर्थंकर हुए,जिनमें क्रमशः प्रथम ऋषभदेव एवं अंतिम महावीर हुए। वैसे तो सभी ने जैन धर्म को समृद्ध किया लेकिन तीर्थंकर परंपरा में पार्श्वनाथ एवं महावीर सर्वाधिक प्रमुख तीर्थंकर हुए जिनके कठिन परिश्रम एवं पुरुषार्थ के प्रतिफल के रूप में जैन धर्म का वर्तमान स्वरूप हमारे सामने प्रत्यक्ष है।वहीं तीर्थंकरों की दीर्घ परंपरा में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर 24वें तीर्थंकर महावीर ने लोकजन को मोक्ष का मार्ग प्रस्तुत कराया एवं काल तथा समय एवं परिस्थितियों के सापेक्ष जैन धर्म को पुनः स्थापित करते रहे।भगवान महावीर कहते हैं कि- "धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये छः मूल द्रव्य हैं और इन्हीं की समिष्ट लोक है।"[6]

"तीर्थंकर परंपरा में अंतिम तीर्थंकर महावीर क्रांतिकारी व्यक्तितत्व लेकर प्रकट हुए। उनमें स्वस्थ समाज निर्माण और आदर्श व्यक्ति, निर्माण की तड़प थी।"[7]इस तरह जैन धर्म में तीर्थंकर परंपरा ने लोकजन के बीच विश्वास की विरासत को खड़ा किया। "धार्मिक विश्वास लोगों के धार्मिक व्यवहार के भावनात्मक अर्थ का महत्वपूर्ण सूचक होते हैं और वे अक्सर हमें यह समझने में सहायता करते हैं कि किस प्रकार धर्म सारे व्यवहार को प्रभावित करता है।"[8]

वर्तमान समय में तीर्थंकरों का भौतिक शरीर नहीं है। लेकिन उनके विचार आज भी पूरी दुनिया में कायम ही नहीं है वरन उसे लोग पूरी प्रतिबद्धता के साथ आत्मसात करते हुए जीवन को गति दे रहे हैं। पूरी दुनिया में जैन परंपरा के मठ एवं मंदिर देखें जा सकते हैं, जहां से सत्य,अहिंसा एवं

मानवतावादी विचारोंका शंखनाद होता है।

जैन धर्म एवं वर्ण व्यवस्था

भारत में हम जाति एवं वर्ण का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि मानव सभ्यता की यात्रा में जाति व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का गहरा प्रभाव रहा है। इसके आधार पर जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाशिये पर रहा। जाति एवं वर्ण के आधार पर विविध स्तरों पर भेद को लागू किया गया।परिणामस्वरूप हाशिये के लोकजन का जीवन तो था, परंतु,पशुवत।जैन धर्म ने मानव और मानव के बीच भेद की वैचारिकी को स्वीकार नहीं किया, बल्कि इसे पूरी तरह से अमानवीय माना। जैन धर्म भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह जाति एवं वर्ण व्यवस्था को इसलिए नकारता है कि यह धर्म, सत्य,अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह के सिद्धांतों पर चलता है यह पूरी तरह से मानवता भी समानता एवं अहिंसा पर बल देता है, मानव की गरिमा को स्थापित करता है।जैन धर्म का मानना है कि जाति व्यवस्था भारतीय समाज का एक प्रमुख एवं जटिल पहलू है। जाति व्यवस्था में जन्म के आधार पर अधिकार एवं कर्तव्य का निर्धारण किया जाता है, परंतु जैन धर्म इस तरह के भेद को स्वीकार नहीं करता है।"जैन धर्म एक विशुद्ध महान आध्यात्मिक धर्म है। इस शाश्वत आत्म धर्म का संबंध किसी जाति विशेष से कभी नहीं रहा है। सभी जाति के मानवों ने इस जैन धर्म का पालन कर आत्म कल्याण और विश्व शांति लक्ष्य पूर्ण किया।"[9]जैन धर्म का मानना है कि इस धरा के सभी जीव की आत्माएं हैं। आत्मा का भौतिक या सामाजिक विभाजन नहीं किया जा सकता है। जैन धर्म की मान्यता अनुसार आत्मा पूरी तरह अजर, अमर, अविनाशी और शाश्वत है।अत: आत्मा की कोई जाति, वर्ण,लिंग या भौतिक रूप नहीं हो सकता है। इसलिए जैन धर्म में सभी जीवों को समान माना जाता है एवं किसी भी प्रकार की भेद पूर्ण व्यवस्था स्वीकार नहीं होती है। इस तरह के उल्लेख जैन धर्म ग्रंथो में भी मिलते हैं।इस तरह देखा जाय तो "जैन संस्कृति सामाजिक समता की पक्षधर है। उसमें जाति के स्थान पर कर्म को महत्त्व दिया गया है और स्वयं के पुरुषार्थ को प्रस्थापित किया गया है। यही पुरुषार्थ कल का नियति बन जाता है। इसलिये यहां ईश्वर का नहीं, पुरुषार्थ का सर्वोपरि स्थान है।"[10]

विविध काल खंडो में भारतीय जनमानस व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में विभाजित किया गया था। यह व्यवस्था जन्म के आधार पर आधारित रही। जैन धर्म इस तरह की व्यवस्था को कभी भी स्वीकार नहीं किया,बल्कि जैन धर्म की मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि कर्म एवं उसकी आध्यात्मिक साधना के आधार पर करना चाहिए।जैन धर्म में तीर्थंकर परंपरा में कभी भी जाति एवं वर्ण व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया गया,बल्कि जाति एवं वर्ण व्यवस्था कापूरी तरह से विरोध किया, जिसमें महावीर का नाम सर्वोपरि है। महावीर का मानना था कि इस धरा पर सभी जीवों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। यह लक्ष्य सभी के लिए समान होना चाहिए। महावीर ने अपने अनुयायियों को उपदेश दिया कि लोकजन के बीच भेद को समाप्त करने की पहल करनी चाहिए एवं सभी जीवों के प्रति दया एवं करुणा का भाव होना चाहिए एवं जैन धर्म ने लोगों को सामाजिक सुधार का पाठ पढ़ाया एवं जैन मंदिरों, मठों एवं उससे जुड़े धार्मिक स्थलों को सभी जातियों के लिए खोला एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से जातिवाद और छूआछूत को कभी भी स्वीकार किया-

"कम्मुण होई, कम्मुण होई खत्रिओं"[11]

अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब कर्मानुसार हैं, जन्म से नहीं।

अतएव अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि जैन धर्म 'जन्म' की बजाए 'कर्म' के सिद्धांत पर आधारित है एवं कर्म के सिद्धांत के अनुसार किसी भी जीव का वर्तमान जीवन उसके पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम है। इस तरह से जैन धर्म जाति एवं वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करता है और सभी जीवों की समानता और आत्मा की शुद्धता पर बल देता है। सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह के माध्यम से लोकजन के बीच भेदभाव को समाप्त करने का सार्थक प्रयास करता है। जैन धर्म पूरी प्रतिबद्धता के साथ वैश्विक दुनिया में समानता और न्याय के सिद्धांतों को स्थापित करने का सार्थक प्रयास कर रहा है।

जैन धर्म एवं हिंदू संस्कृति

जैन धर्म हिंदू धर्म की उप शाखा नहीं है,वरन इसके विरोध में एक स्वतंत्र धर्म है जो श्रमण परंपरा पर आधारित है।इस धरा पर श्रमण एवं वैदिक परंपरा अनादि काल से गतिमान रही है।जैन धर्म श्रमण परंपरा के साथ आगे बढ़ा। भारत ही नहीं, वरन पूरी दुनिया में जैन धर्म स्वतंत्र एवं संपूर्ण धर्म है। इसके धर्मावलम्बियों के साथ-साथ इनके मठ, मंदिर,आश्रम,पूजा-पद्धति,जीवन शैली, संस्कृति, कला तथा मान्यताएं भी पूरी तरह स्वतंत्र हैं।जैन संस्कृति की प्रथम यह मूल अवधारणा है कि आत्मा अनन्त है। वे पृथक्-पृथक् हैं। उनमें अनन्त शक्ति और ज्ञान प्रवाहित हैं। मूलतः वह आत्मा विशुद्ध है, पर कर्मों के कारण उसकी विशुद्धता आवृत्त हो जाती है। वीतरागता प्राप्त करने पर वही संसारी आत्मा परमात्मा बन जाती है। "जैन संस्कृति का यह लोकतन्त्रात्मक स्वरूप है जहां सभी आत्मायें बराबर हैं और वे सर्वोच्च स्थान पा सकती है।"जैन संस्कृति की यह विशेषता है कि वह अथ से इति तक समता की बात करती है।"[12]इस धर्म में खानपान की शुद्धता, आचार-विचार की शुद्धता के साथ-साथ अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया जाता है। यह समाज आज भी संघर्ष से दूर शांतिप्रिय, शिक्षित एवं सभ्य है।जैन धर्म की वैचारिकी को आज वैश्विक त्रासदी की समाप्ति के लिए एक अभिकरण के रूप में देखा

जा सकता है।

जैन धर्म के मंत्र एवं प्रार्थना

वैश्विक भारत में हम देखें तो जितने भी धर्म, संप्रदाय, पंथ हैं उनके मंत्र एवं प्रार्थना के साथ-साथ दिनचर्या भी अलग-अलग है। उसी में जैन धर्म भी एक प्राचीन धर्म है जिसकी अपनी अलग मूल्य एवं मान्यताएं हैं, अनेक उत्कृष्ट मंत्र एवं प्रार्थना है जिसकी नींव अहिंसा, सत्य,अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर आधारित है। जैन धर्म के धर्मावलंबी भगवान महावीर को अपना अंतिम तीर्थंकर मानते हैं एवं उनके उपदेशों का अक्षरस: पालन करते हैं। जैन धर्म में मंत्र एवं प्रार्थना का विशेष महत्व है। जैन समाज का सर्वजन जो मंत्र एवं प्रार्थना याद रखताहै और जपता है,उसका नाम है-**'णमोकार महामंत्र'** मान्यता अनुसार जैन परंपरा में जिसे नमस्कार महामंत्र कहा जाता है। बच्चों के जन्म के पश्चात सर्वप्रथम उसके कान में इसका आह्वान किया जाता है। माना जाता है कि यह एक ऐसा मंत्र है, जिससे हजारों मंत्रों की उत्पत्ति हुई है। जैन धर्म का यह नमस्कार महामंत्र पूरी दुनिया में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इसका संबंध व्यक्ति विशेष की पूजा से नहीं है,अपितु गुणों की पूजा से है। यह जैन धर्म का सबसे पवित्र एवं प्रमुख मंत्र है।

जैन परंपरा में जैन तीर्थकरों, सिद्धो, आचार्यों और साधुओं को यह मंत्र नमस्कार करता है। बहुतायत इसका उच्चारण आत्म शुद्धि एवं मानसिक शांति के लिए किया जाता है। इस मंत्र का शुद्ध स्वरूप इस प्रकार है:

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व-साहूणं

इस मंत्र का आशय इस धरा के सभी अरिहंतो, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों एवं साधुओं को नमस्कार है।

उवसग्गहरं स्रोत

जैन धर्म में यह स्रोत भी एक प्रमुख जैन मंत्र हैं। मान्यतानुसार इस मंत्र को संकठ एवं दु:ख से मुक्ति दिलाने के लिए जाना जाता है, साथ ही यह मंत्र भगवान पार्श्वनाथ को भी समर्पित है।

भक्तामर स्रोत

भक्तामर स्रोत आचार्य मानतुंग द्वारा रचित एक प्रसिद्ध स्रोत हैं, जिसमें 48 पद होते हैं। इस मंत्र को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक समस्याओं की मुक्ति के लिए जाना जाता है, साथ ही यह मंत्र भगवान आदिनाथ अर्थात ऋषभदेव को समर्पित है।

प्रार्थना

जैन धर्म में आत्म शुद्धि एवं आत्मनिरीक्षण के लिए जैन प्रार्थनाओं को महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। प्रार्थना के माध्यम से जैन धर्मावलंबी अपने ईश्वर और गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं जिसमें तीन प्रार्थनाएं महत्वपूर्ण है :

1. सामयिक प्रार्थना
2. क्षमावाणिक प्रार्थना
3. आचार्य भिक्षु वंदना

सामयिक एक महत्वपूर्ण धार्मिक क्रिया हैं, जिसे जैन धर्मावलंबी जीवन में शांति एवं स्थिरता के लिए धारण करते हैं। वस्तुतः यह आत्मनिरीक्षण एवं ध्यान का समय होता है।वहीं क्षमावाणीक प्रार्थना के दौरान जैन धर्मावलंबी दूसरे से क्षमा मांगते हैं। यह प्रार्थना अहिंसा और क्षमा की उपादेयता को व्यक्त करती है।

आचार्य भिक्षु वंदना आचार्यों और साधुओं के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए की जाती है। इस प्रार्थना के अंतर्गत तपस्या एवं धर्म उपदेश का बड़े स्तर पर सम्मान किया जाता है। जैन धर्म में प्रचलित मंत्र एवं प्रार्थना,बाह्यआडंबर एवं अंधविश्वासों से पूरी तरह दूर हैं,सिर्फ आत्म शुद्धि, मानसिक शक्ति और आध्यात्मिक उन्नति के लिए संपादित की जाती हैं।जैन धर्मावलंबी इन मंत्रों एवं प्रार्थनाओं के माध्यम से आत्मनिरीक्षण, ध्यान,सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलने का सार्थक प्रयास करते हैं।वस्तुत: जैन धर्म आत्म कल्याण के साथ-साथ लोकजन के बीच शक्ति एवं सह-अस्तित्व का संदेश देता है।अस्तु,बाह्यआडंबरों से दूर जैन धर्म के मंत्र एवं प्रार्थना पूरी दुनिया के लिए आवश्यक है। इन मंत्रों एवं प्रार्थनाओं के माध्यम से वैश्विक शांति स्थापित कर संघर्ष को कम किया जा सकता है। इस संसार में मोक्ष प्राप्ति के लिए सभी धर्म अपनी वैचारिकी के अनुरूप अलग-अलग उपाय बताए हैं।

जैन धर्म में भी मोक्ष की प्राप्ति जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। मोक्ष से आशय आत्मा की पूर्ण मुक्ति, जिसमें आत्मा कर्म बंधनों से मुक्त होकर अनंत ज्ञान,अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत शक्ति प्राप्त करती है।जैन धर्म में मोक्ष प्राप्ति के लिए विभिन्न उपाय दृष्टिगत हैं, जिसे "त्रिरत्न" के रूप में जाना जाता है जो इस प्रकार हैं :

1. सम्यक दर्शन
2. सम्यक ज्ञान
3. सम्यक चरित्र

सम्यक दर्शन का आशय सत्य में पूरी दृढ़ता के साथ विश्वास एवं श्रद्धा रखने से है। जैन दर्शन में सबसे महत्वपूर्ण कदम मोक्ष मार्ग है। सम्यक दर्शन का अभिप्राय व्यक्ति को आत्मा एवं उसके गुणों में विश्वास से है, इसके अभाव में मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं है। सम्यक दर्शन से परिपूर्ण मानव जीवन पूरी तरह से अलग होता है, वह सांसारिक पदार्थों में आसक्ति नहीं रखता, बल्कि संसार में रहते हुऐ उससे भिन्न रहता है। इस तथ्य का उदाहरण कमल के फूल और कीचड़ से दिया जा सकता है, अर्थात कीचड़ में रहने वाला कमल, कीचड़ में रह कर भी कीचड़ से अलग नहीं हो सकता हैं, जबकि कमल की विशेषता कीचड़ से पूरी तरह अलग है।

सम्यक ज्ञान का आशय आत्मा, कर्म एवं मोक्ष के बारे में सही और तथ्यपरक ज्ञान से है। सम्यक ज्ञान को जैन धर्म के साथ-साथ साहित्यों के गंभीर एवं तथ्यपरक अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। कहा भी गया है कि सम्यक ज्ञान के अभाव में सम्यक दर्शन और सम्यक चरित्र को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सम्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को अनवरत अध्ययन, ज्ञान,सत्संग,भजन कीर्तन करते रहना चाहिए तभी मोक्ष प्राप्ति संभव होगी।

साधना एवं मोक्ष प्राप्ति का तीसरा सोपान सम्यक चारित्र है। सम्यक चारित्र से आशय नैतिक, धार्मिक एवं मूल्यों के अनुरूप जीवन को गतिमान करने से है। सम्यक चरित्र के अंतर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय,अचौर्य ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का पालन करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि सही आचरण के अभाव में सम्यक दर्शन एवं सम्यक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो पाती है। जैन धर्म में कहा गया है की सम्यक चरित्र को धारण करने के लिए व्यक्ति को अपनी इच्छाओं और वासनाओं पर पूरी तरह से नियंत्रण रखकर संयमित जीवन को गतिमान करना चाहिए।

इस तरह देखा जाय तो जैन धर्म के मंत्र एवं प्रार्थना वाह्य आडंबरों से दूर मानव गरिमा को प्रतिस्थापित करता है। वैश्विक पटल पर लोकजन के लिए यह एक ऐसा मंत्र है जिसके माध्यम से मानव मुक्ति संभव है।

जैन धर्म में पांच महापर्व और अणुव्रत

जैन धर्मावलंबियों के लिए पंच महाव्रत इस प्रकार है- अहिंसा, सत्य,अस्तेय,ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह। अहिंसा से आशय इस धरा पर किसी भी जीव को मन, वचन, कर्म से हानि नहीं पहुंचना चाहिए। सदैव सत्य बोलना और सत्य के पथ पर चलना चाहिए। असत्य से हमेशा दूर रहना चाहिए। बिना अनुमति के किसी की भी वस्तु को स्वीकार नहीं करना चाहिए। लोकजन को सदैव अपनी इंद्रियों पर संयम और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। सांसारिक जीवन अर्थात सांसारिक संपत्तियों एवं इच्छाओं का पूरी तरह त्याग करना चाहिए।अतएव देखा जाए तो जैन धर्म का त्रिरत्न मार्ग पूरी दुनिया में शांति एवं सद्भावना स्थापित करने में सक्षम दृष्टिगोचर होता है जो पूरी दुनिया को संघर्ष की वैचारिकी से बाहर निकाल सकता है। अतएव भेद एवं संघर्ष रहित दुनिया के निर्माण हेतु जैन धर्म की वैचारिकी को आत्मसात करना होगा।

ध्यान एवं तप

भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में तप का विशेष महत्व रहा है। वहीं मानव सभ्यता की यात्रा में जीवन संस्कृति के प्रमुख अभिकरण के रूप ध्यान एवं तप को देखा जा सकता है। आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी लोकजन इससे अपने को अलग नहीं कर पाया है। जैन धर्म में मोक्ष प्राप्ति हेतु ध्यान एवं तप का विशेष स्थान है, ज्ञान के माध्यम से जहां आत्मा को शुद्ध किया जाता है, तो वहीं तप के माध्यम से दुष्कर्मों का नाश किया जाता है। जैन धर्म में इसे त्रिरत्न के नाम से जाना जाता है। अतएव अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि जैन धर्म में मोक्ष की प्राप्ति त्रिरत्न, पंच महाव्रत, ध्यान तथा तप के माध्यम से संभव है एवं इसके माध्यम से हम मानवीकृत दुष्कर्मों एवं बंधनों से मुक्त हो सकते हैं।

जैन धर्म का सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान

मानव का महत्वपूर्ण अंग संस्कृति है, जिसे भौतिक-अभौतिक के साथ-साथ जीवन शैली के रूप में भी जाना जाता है। यदि हम शाब्दिक दृष्टिकोण से देखें तो इसका संबंध उचित आचार-विचार से है, जहां ज्ञान, व्यवहार एवं क्रिया का समन्वय होता है। इसलिए संस्कृति को समाज की आत्मा के रूप में स्वीकार किया जाता है। यदि हम बात करें भारतीय संस्कृति की तो इसकी विशिष्टताओं में आध्यात्मिकता, सहिष्णुता, विश्व बंधुत्व की भावना, अनेकता में एकता,त्याग,तपस्या एवं उचित आचार-विचार शामिल हैं। भारतीय संस्कृति के वैशिष्टयों के कारण कुछ स्वार्थपरक शक्तियों के

साथ-साथ, विदेशी शक्तियों ने इन्हें नष्ट करना चाहा एवं अपनी संस्कृति को थोपना चाहा, किंतु इतने प्रहारों एवं आघातों को झेलते हुए भी हमारी संस्कृति न केवल परिष्कृत एवं समृद्ध हुई, बल्कि उन्हें भी अपने में समाहित कर लिया।अतएव दृष्टिगत है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ एवं जैन धर्म के सूत्रधार बने। भगवान ऋषभदेव ने भोग-विलास आधारित संस्कृति के स्थान पर कर्म आधारित संस्कृति को प्रतिष्ठित किया और कालांतर में जैन तीर्थंकरों ने कर्म आधारित संस्कृति को पुष्ट किया एवं जीवन जीने का वास्तविक फलसफा स्थापित किया। अतएव भारतीय संस्कृति के विकास एवं संवर्धन में जैन संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इस तरह देखा जाय तो "जैन संस्कृति त्यागमूलक है, भोगमूलक नहीं है।"[13]'जैन संस्कृति' जीओ और जीने दो' की संस्कृति है जिसमें स्व-गृहीत की भावना निहित है, जो अहिंसा का उद्घोष करती है।"[14]

शाकाहार जीवन की प्रतिष्ठा

जीवों के प्रति दया एवं करुणा की भावना रखना जैन धर्म का महत्वपूर्ण दर्शन है। विविध कालखंडोंसे अद्यतन हम देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जहां एक धार्मिक विचारधारा के लोग पशु-पक्षियों की बलि देना महत्वपूर्ण मानते हैं तो वहीं जनसंख्या का एक बड़ा तबका पशु-पक्षियों के रूप में अपनी उदर पूर्ति करता आ रहा है। इस तरह की जीवन संस्कृति को जैन धर्मावलम्बियों ने पूरी तरह से नकारा और शाकाहार को प्रोत्साहन दिया। जैन धर्म का मानना है कि निरीह एवं बेजुबान पशु-पक्षियों की बलि देकर अथवा उससे उदर पूर्ति करके जीवन को गतिमान करना पूरी तरह से गलत है। ऐसे लोगों का जीवन व्यर्थ है। जैन धर्म ने शाकाहार को अपने धर्म आचरण का अनिवार्य हिस्सा बनाया और लोकजन को शाकाहारी जीवन धारण करने के लिए प्रेरित भी करता है। भारत के ऐसे कई हिस्से एवं राज्य हैं जहां जैन धर्म का प्रभाव अधिक रहा वहां शाकाहार को बड़े स्तर पर बढ़ावा मिला।अतएव, "जैनाचार की मूल भित्ति अहिंसा है। अहिंसा जितना सूक्ष्म विवेचन जैन परंपरा में मिलता है। इतना अन्य किसी परंपरा मे देखने को नहीं मिलता है।"[15]अस्तु,एक बार आवश्यकता है पूरी दुनिया को निरीह पशु-पक्षियों को बचाकर शाकाहार जीवन धारण करने की जरूरत है। तभी शायद हम जीव की गरिमा के प्रति वास्तविक न्याय कर पाएंगे।

वास्तुकला एवं कला

वास्तुकला एवं चित्रकला की विरासत को इतिहास के विविध कालखंडों में बखूबी देखा जा सकता है। वास्तुकला के विरासत के संबंध में भी जैन धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन मंदिरों की सुंदर वास्तुकला जिसमें दिलवाड़ा मंदिर, रणकपुर मंदिर और शत्रुंजय महातीर्थ भारतीय स्थापत्य कला का जीवंत एवं उत्कृष्ट उदाहरण है। इन मंदिरों की स्थापत्य शैली ने भारत के अन्य धर्मों से जुड़े शैली को भी प्रभावित किया। इस तरह देखा जाए तो जैन धर्म का वास्तुकला में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

कुछ दृष्टांत हम देखें तो- "मथुरा में पाये जाने वाले जैन स्तूप सबसे पुराने हैं। बुंदेलखंड में ग्यारहवीं और बारहवीं सदियों की जैन मूर्तियां ढेर की ढेर मिलती हैं। मैसूर के श्रमण बेलगोला और करकल नामक स्थानों में गोमलेश्वर या बाहुबली की विशाल प्रतिमा है। ग्वालियर के पास चट्टानों में जैन मूर्तिकारी के जो नमूने हैं, वे पंद्रहवीं सदी के हैं। जैनों ने पर्वत काटकर कन्दरा-मंदिर भी बनवाए थे, जिनके ई.पू. द्वितीय शती के नमूने उड़ीसा की हाथी-गुम्फ़-गुफा-कन्दरा ने मिलते हैं। बिहार में पार्श्वनाथ पावापुरी और राजगीर में तथा काथियावाड़ गिसार और पालितान में भी जैनो के मंदिर एवं तीर्थस्थल हैं।"[16] अतएव कहा जा सकता है कि जैन वास्तुकला भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति की वास्तविक धरोहर हैं।

जैन साहित्य,शिक्षा,ज्ञान एवंसामाजिक समन्वय

जैन धर्म में साहित्य, शिक्षा एवं भारतीय ज्ञान परंपरा को बड़े स्तर पर समृद्ध किया तो वहीं विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच सामाजिक समन्वय की वैचारिकी को मजबूती के साथ स्थापित किया। "साहित्य संस्कृति का उद्वाहक तत्त्व है। संस्कृति के हर कोने को साहित्य के अन्तस्तल में देखा जा सकता है। जैन साहित्य की विविधता और प्राञ्जलता में उसकी संस्कृति को पहचानना कठिन नहीं। जैनाचार्यों ने अपने आपको लौकिक जीवन से समरस बनाये रखा। इसके लिए उन्होंने प्राकृत और अपभ्रंश जैसी लोकभाषाओं किंवा बोलियों को अपनी अभिव्यक्ति का साधन स्वीकार किया। आवश्यकता प्रतीत होने पर उन्होंने संस्कृत को भी पूरे मन से अपनाया।"[17] इस धरा पर सबसे प्राचीन उपलब्ध साहित्य में सर्वाधिक जैन धर्म से संबंधित हैं,जो प्रमाणिकता के आधार पर भी सर्वोपरि है। कहा जाता है कि बृहद जैन साहित्य का अधिकतर हिस्सा धार्मिक साहित्य है जो संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में लिखे गए हैं।जैन रचनाकारो द्वारा जिन ग्रंथो की रचना की गई है।इसमे तत्वार्थ सूत्र, उतराध्यान सूत्र और कल्प सूत्र प्रमुख हैं। इन ग्रंथों ने भारतीय दर्शन और साहित्य को एक नई दिशा दिया। साथ ही साथ जैन साहित्यों ने हिंदू साहित्यो, परंपराओं को भी नैतिकता और धर्म के लेखन के आधार पर प्रभावित किया।आज भी भगवान महावीर के उपदेश आगम के रूप में सुरक्षित है जिसे श्वेतांबर धर्मावली अस्वीकार करते हैं।दिगंबरों का मत है कि कालदोष से यह दोषयुक्त हो गया है। विक्रमी द्वितीय में आचार्य कुंदकुंद ने प्रवचनसार, समय प्राभृत नियमसार एवं पंचास्तिकाय आदि जैसे ग्रंथो की रचना की। विक्रम की तीसरी शती में शिवशर्मा सूरि ने कम्प्पमड़ी तथा आचार्य उमास्वाति ने जम्बुदीप समास की रचना की। विक्रम की छठी शताब्दी में संघदास क्षमाश्रमण के द्वारा वासुदेव बिण्डी नामक ग्रंथ की रचना की। विक्रमी सातवीं शती में जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण हुए जिन्होने

विशेषावश्यक भाष्य की रचना की। इस रचना को जैन आगमों का महाकोश माना जाता है। आठवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य हरिश्चंद्र ने ग्रंथ की रचना की। कालांतर में जैन आचार्यों एवं धर्मावलंबियों ने छोटे-बड़े ढेर सारे ग्रंथों की रचना की। इस तरह से देखा जाए तो जैन धर्म में जैन साहित्य रचना का कम अनवरत गतिमान रहा वर्तमान में भी अनेक आचार्य नए-नए साहित्यों का सृजन कर रहे हैं।

इस तरह जैन धर्म शिक्षा एवं ज्ञान के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान दिया है। जैन आचार्य एवं मुनि अपने ज्ञान की दक्षता को लेकर वैश्विक पटल पर प्रसिद्ध रहे हैं जिन्होंने विभिन्न शास्त्रों एवं विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वर्तमान समय में भी जैन धर्म, शिक्षा और ज्ञान के केंद्र रूप में अपनी सकारात्मक उपस्थिति दर्ज किए हुए हैं।

जैन धर्म एवं सामाजिक समन्वय

भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा में सामाजिक समन्वय एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हिंदू धर्म और जैन धर्म के बीच समन्वय और सह-अस्तित्व की एक समृद्ध परंपरा रही है। हिंदू धर्म और जैन धर्मावलंबियों ने एक साथ मिलकर धर्म और सामाजिक गतिविधियों का वास्तविक फलसफा लोकजन के बीच रखा है। हिंदू पर्व और त्योहारों को जैन परंपरा के लोग प्रसन्नता से मानते हैं।वहीं हिंदू धर्मालंबियों को देख तो हिंदू धर्मावलंबी भी जैन धर्म के पर्व और उत्सवों को सम्मान के साथ मानते हैं। विभिन्न धर्मों के बीच जैन संस्कृति की समन्वयकारी व्यवस्था आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है।

जैन धर्म एवं राजशाही हस्तक्षेप

मानव सभ्यता की यात्रा में सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में राजाओं का हस्तक्षेप बड़े स्तर पर रहा है जिनके अस्तित्व को विभिन्न कालखंडो में देखा जा सकता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर महावीर के समय हमारे देश में गणतंत्र एवं राजतंत्र दोनों प्रकार की शासन प्रणाली के साक्ष्य मिलते हैं साथ ही यह भी देखने को मिलता है की तात्कालिक कई राजा भगवान महावीर के परम भक्त थे।श्रेणिक,कोणिक आदि राजाओं के साथ-साथ नंद राजाओं ने भी जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया। जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सम्राट अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति ने संपूर्ण देश में अनेक जैन मंदिर बनवाएं एवं जैन दूतों को दक्षिण भारत में भेज कर वहां के लोगों को जैन धर्म से परिचित करवाया। इसी तरह कलिंग देश के खारवेल राजा ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बड़े स्तर पर दान दिया। राजा कुमारपाल ने जैन धर्म को अपनाया एवं गुजरात राज्य को आदर्श जैन राज्य बनाने का सार्थक प्रयास किया। इसी तरह दक्षिण भारत में कदम्ब,गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य तथा होयसल वंश के राजाओं ने जैन संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।अतएव अवधारणात्मक रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपराके संरक्षण एवं संवर्धन में जैन राजाओं एवं जैन धर्म से प्रभावित राजाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

जैन धर्म : योग की एक समृद्ध परंपरा

भारत में योग की एक समृद्ध विरासत रही है।हजारों वर्षों से लोग इसे अपने जीवन का हिस्सा बनाकर जीवन को गति देते रहे हैं। योग का उद्भव आज से 5 हजार साल पहले माना जाता है जिसका उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। आज योग को पूरी दुनिया अध्यात्म और स्वास्थ्य में एक साधन के रूप में स्वीकार कर रही है। योग भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। योग का उद्देश्य शरीर, मन और आत्मा के बीच बेहतर संतुलन स्थापित करना है। साथ ही योग के विभिन्न आसन,प्राणायाम और ध्यान जैसे तथ्य व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखतेहैं। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में योग के आठ अंगों का वर्णन किया है जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं।

आज भारत ने पूरी दुनिया को योग से परिचित कराया है।अब योग वैश्विक आंदोलन बन चुका है।प्रत्येक वर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया जाता है। योग के विभिन्न प्रकार भी हैं, जैसे- हठयोग, अष्टांगयोग, विन्यासयोग, कुंडलीनियोग।इसके अभ्यास से व्यक्ति अपनी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में सुधार कर सकता है। भारत की योग परंपरा को समृद्ध करने में विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, पंथों के साथ-साथ आम लोकजन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।"जैन योग का इतिहास बहुत प्राचीन है। प्रागैतिहासिक काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने जनता को सुखी होने के लिए योग करना सिखाया। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा जिन योगी की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं, उनकी पहचान ऋषभदेव के रूप में की गई है।"[18] इस तरह देखा जाय तो भारत की योग परंपरा में जैन धर्म का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है। जैन धर्म द्वारा आत्म शुद्धि, अहिंसा तथा आत्मसंयम पर विशेष बल दिया जाता है। वस्तुतः जैन धर्म का यह कृत्य योग के सिद्धांतों को ही स्थापित करता है। जैन धर्म में योग की अवधारणा को ध्यान और तपस्या के रूप में स्वीकार किया जाता है। जैन धर्म के प्रमुख ग्रंथ 'आचारांग' सूत्र और 'उत्तराध्ययन' सूत्र में योग और ध्यान की उपादेयता को तथ्यपरक रूप में रेखांकित किया गया है। जैन धर्म में योग के प्रमुख तत्वों के रूप में हम ध्यान, तपस्या, अहिंसा, संयम को विशेष रूप से देख सकते हैं।साथ ही जैन योग की विधियों को हम देखें तो इसमें केवल्यज्ञान, पणिधान ध्यान अंतरंगतप जैसे विधियों के माध्यम से जैन धर्मावलंबी ने अपना आत्म साक्षात्कार एवं आत्म शुद्धि करते हैं।योग की यह विधियां लोकजन को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखती हैं। जैन धर्म की परंपरा में जैन मुनि एवं साधु अपने दैनिक जीवन में योग और

ध्यान का विशेष पालन करते हैं। इसके माध्यम से अपना आत्म साक्षात्कार करते हैं। अतएव कहा जा सकता है कि वैश्विक पटल पर योग की परंपरा को बढ़ावा देने में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

समापन अवलोकन

प्रस्तुत शोध-पत्र के समापन-अवलोकन के रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा के संवर्धन में जैन धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।दुनिया में जैन धर्म एक ऐसा धर्म है जो हिंसा को कभी भी स्वीकार नहीं करता है। अहिंसा आधारित उनकी जीवन शैली है।जैन धर्म की तीर्थंकर परंपरा एक महान विरासत के रूप में रही है, क्योंकि यह किसी भी स्तर पर भेद को पूरी तरह से खारिज करती है। भगवान ऋषभदेव ने जहां जैन परंपरा और इससे जुड़ी जीवन शैली की नींव रखी तो अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने जैन धर्म को वैश्विक पटल पर स्थापित किया। इस तरह तीर्थंकर परंपरा ने दुनिया के लोकजन को जैन धर्म के रूप में एक अमूल्य निधि और धरोहर सौंपा। जैन धर्म ने हिंदू संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा को भी काफी समृद्ध किया है। दुनिया में शाकाहार को बढ़ावा देने के लिए कोई धर्म बड़े स्तर पर पहल किया या आगे आया तो उसमें जैन धर्म प्रमुख है। इसके साथ-साथ लोगों के प्रति दया, करुणा, प्रेम,भाईचारा सहसंबंध की वैचारिकी को पूरी दुनिया में स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया। जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें व्यक्ति विशेष को नहीं पूजा जाता है एवं उसे सबसे ऊंचे स्थान पर नहीं रखा जाता, बल्कि उनके गुणों के आधार पर उसे पूजा जाता है। इस तरह का दृष्टिकोण सिर्फ जैन परंपरा में ही पाया जाता है।वस्तुतः यही इस धर्म की महानता भी है। जैन धर्म ने लोकजन को सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, एवं सम्यक चरित्र का मंत्र देकर उनको जीवन के वास्तविक फलसफा से परिचित कराया। जैन धर्म की परंपरा यही नहीं रुकती, बल्कि वास्तुकला एवंकला में भी इसका अतुलनीय योगदान रहा है। इसलिए जैन साहित्यों को दुनिया में ऊंचा स्थान प्राप्त है। अतएव जैन राजा अथवा जैन परंपरा से प्रभावित राजाओं ने **'तोड़ने की बजाय, जोड़ने पर ही बल दिया'**। जैन परंपरा भारत की समृद्ध योग की परंपरा को भी आगे बढ़ाया। जप, तप एवं ध्यान के माध्यम से इसे समृद्ध किया। इस तरह देखा जाए तो जैन धर्म ने वास्तव में मानवता की रक्षा की एवं लोकजन को मानवता का पाठ भी पढ़ाया। सत्य एवं अहिंसा के रास्ते पर स्वयं तो चले, पूरी दुनिया को इस रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित भी किया। अपने स्थापत्य काल से अद्यतन जैन धर्म की वैचारिकी अपने मूल्यों, मान्यताओं एवं अपनी परंपरागत जीवन शैली के साथ गतिमान है। अस्तु, पूरी दुनिया को आज लोकजन कोविविध स्तरों व्याप्त संघर्षों से बाहर निकालने के लिए जैन धर्म की वैचारिकी को आत्मसात करते हुए इसे जीवन में धारण करना होगा तभी शायद इस धरा पर मानव एवं मानव गरिमा का अस्तित्व बना रहेगा।

संदर्भ

1. भास्कर, भागचन्द्र जैन (1999): भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का अवदान,पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ.-प्रकाशकीय का कुछ अंश
2. सिंह, श्यामधर (2005): धर्म का समाजशास्त्र, सपना अशोक प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 424
3. वही,पृ. 429
4. जैन, कैलाश चंद (2005) : जैन धर्म का इतिहास (भाग-3), डी.के. प्रिंट वर्ल्ड (प्रा.), नई दिल्ली,पृ. 731
5. दिनकर, रामधारी सिंह (2008): संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 109
6. मुनिनागराज (1959): जैन धर्म और आधुनिक विज्ञान, रामलाल पूरी, संचालक आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ. 81
7. भानावत, नरेंद्र एवं शांता भानावत (1974): भगवान महावीर: आधुनिक संदर्भ में श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, राजस्थान एवं वितरक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. संपादकीय का कुछ अंश
8. जानसन, हैरी एम.- अनुवादक योगेश अटल (2004): समाजशास्त्र एक विधिवत विवेचन,कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 398
9. जैन, अनेकांत कुमार (2017): जैन धर्म- एक झलक, श्रुत संवर्धन संस्थान, मेरठ, उ.प्र., पृ.-अपनी बात का कुछ अंश
10. भास्कर, भागचन्द्र जैन (1999): भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का अवदान,पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. 12
11. मूथा, मोहनलाल (1982): जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्त, श्री स्थान कवासी जैन धार्मिक शिक्षण शिविर, राजस्थान, पृ. 25
12. भास्कर, भागचन्द्र जैन (1999): भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का अवदान, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. 10
13. श्री साध्वी, डॉ. विचक्षण (2021): जैन धर्म: कहाँ, क्यों और कब?, श्री ताखुगुरु जैन ग्रंथालय, राजस्थान, पृ. 87
14. वही, पृ. 88

15. महराज, मुनिश्री प्रमाण सागर जी (1996): जैन धर्म और दर्शन, शिक्षा भारती, दिल्ली, पृ. 18

16. दिनकर, रामधारी सिंह (2008): संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 122-123

17. भास्कर,भागचन्द्र जैन (1999): भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का अवदान, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, पृ. 35

18. जैन, अनेकांत कुमार (2017): जैन धर्म- एक झलक, श्रुत संवर्धन संस्थान, मेरठ, उ.प्र., पृ. 61